मुनि जिनविजय की कीर्ति गाथा

समीक्षा: डॉ दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

साहित्य अकादेमी की 'भारतीय साहित्य के निर्माता' श्रंखला के अंतर्गत विश्रुत विद्वान मुनि जिनविजय के जीवन और उनके साहित्यिक अवदान पर केंद्रित माधव हाड़ा का यह विनिबंध एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करता है. 27 जनवरी, 1889 को भीलवाड़ा ज़िले के रूपाहेली गांव में किशनसिंह नाम से जन्मे और बाद में मुनि जिनविजय के रूप में जाने गए इस विद्वान की जीवन गाथा जितनी रोमांचक और रोचक है उतना ही वैविध्यपूर्ण है उनका साहित्य कर्म. महात्मा गांधी के आग्रह पर साधु जीवन की बंधी हुई दिनचर्या को त्याग कर भारतीय ज्ञान और साहित्य के अन्वेषण, संशोधन-संपादन और प्रकाशन में रत हो जाने वाले मुनि जी ने अपने जीवन में जितना काम कर लिया, उसे देखकर सहज विश्वास कर पाना कठिन है कि एक व्यक्ति यह सब कर सका होगा. अफ़सोस की बात यह कि भारतीय साहित्य के इस मनीषी के बारे में बहुत कम जानकारियां उपलब्ध हैं. अपनी दो आत्मकथाओं *जिनविजय जीवन-कथा* और *मेरी जीवन प्रपंच कथा* में उन्होंने अपने जीवन के प्रारंभिक इक्कीस वर्षों के जीवन का वृत्तांत लिखा है और *जिनविजय जीवन कथा* की भूमिका में बाद की जीवन यात्रा का संक्षिप्त और सांकेतिक वर्णन किया है. उनके जीवन की कुछ जानकारी विभिन्न विद्वानों से उनके पत्राचार में मिलती है.

ऐसे में डॉ माधव हाड़ा के इस काम का महत्व और बढ़ जाता है कि उन्होंने अनथक श्रम कर इतनी सारी सामग्री जुटाई है और हम सबको, विशेष रूप से उस नई पीढ़ी को जो कदाचित इस मनीषी के नाम तक से वाक़िफ़ नहीं है, मुनि जी के जीवन और काम का इतना प्रामाणिक परिचय दिया है. पुस्तक में मुनि जी के जीवन के अतिरिक्त उनके अनुसंधान और संपादन, उनकी सांस्थानिक सक्रियता, उनके काम में प्रयुक्त दृष्टि और पद्धति और उनके अवदान पर अलग-अलग अध्यायों में प्रकाश डाला गया है. डॉ हाड़ा की इस बात से शायद ही कोई असहमत हो कि : मुनि जिनविजय के कार्यों की न तो ठीक से पहचान हुई और न ही उनका अच्छी तरह से मूल्यांकन हुआ." मुनि जिनविजय ने जिन प्राकृत एवम जैन-अपभ्रंश रचनाओं अन्वेषण किया उनमें से अनेक का हिंदी साहित्य के एपूर्व पीठिका के निर्माण में उपयोग तो किया गया लेकिन इस अन्वे षण का श्रेय मुनि जी को नहीं दिया गया. सिंघी जैन ग्रंथमाला मुनि जी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण उपक्रम था जिसके अंतर्गत भारतीय साहित्य की 75 कीमती और विरल कृतियां प्रकाशित हुईं. उनका दूसरा महत्वपूर्ण उपक्रम था राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला जिसके अंतर्गत राजस्थान के इतिहास से सम्बद्ध कई प्राचीन ग्रंथ प्रकशित हुए. इनके अतिरिक्त कांतिविजय इतिहासमाला, जैन साहित्य संशोधक स्टडीज़ और कुछ अन्य ग्रंथमालाएं भी वे हमें दे गए हैं. जहां तक उनकी सांस्थानिक

सक्रियता की बात है, यह याद कर लेना उपयुक्त होगा कि “भांडारकर ओरियंटल इंस्टीट्यूट, पूना की स्थापना में वे केवल सहयोगी थी, लेकिन महात्मा गांधी के आग्रह पर उन्होंने 1920 में साधुचर्या छोड़कर गुजरात पुरातत्त्व मंदिर के पहले पूर्णकालीन आचार्य का दायित्व सम्हाला.” इसके बाद अपने मित्र कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी की पहल पर उन्होंणे भारतीय विद्या भवन की योजना बनाई और इसे साकार किया. रवींद्रनाथ ठाकुर के निमंत्रण पर वे शांतिनिकेतन गए और वहां उन्होंने जैन विद्यापीठ की बुनियाद रखी. अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में वे राजस्थान में रहे और यहां राजस्थान सरकार के आग्रह पर उन्होंणे प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान बनाया तथा सत्रह वर्ष तक इसके मानद निदेशक के रूप में इसे स्थापित किया. महात्मा गांधी का उन पर प्रभाव इतना सघन था कि उन्होंने उनके आदर्शों के अनुरूप चित्तौड़गढ़ के निकट चंदेरिया में सर्वोदय साधना आश्रम की स्थापना भी की.

पुस्तक का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ध्याय है ‘दृष्टि और पद्धति’. डॉ हाड़ा ने इस अध्याय में मुनि जिनविजय जी की आलोचना दृष्टि का परिचय देते हुए उसकी विशेषताओं को रेखांकित किया है. अनेक उदाहरण देकर उन्होंने बताया है कि मुनि जी रचना का महत्व बताते करते हुए उसके ऐतिहासिक महत्त्व पर विशेष रूप से ध्यान देते थे. ऐसा करते हुए उनका प्रखर इतिहासबोध स्वत: उजागर होता चलता है. इसके अतिरिक्त वे किसी भी रचना के साहित्यिक महत्त्व पर भी ख़ास ध्यान देते थे. लेकिन यह करते हुए उनकी सहृदयता सदा उनके साथ रहती थी. डॉ हाड़ा ने एक उदाहरण देकर बताया है कि संपादन-प्रकाशन के लिए ‘धूर्ताख्यान’ का चयन उन्होंने इसकी असाधारण कथावस्तु, आख्यान शैली और व्यंग्य की वजह से ही किया. मुनि जी को इस बात के लिए भी याद रखा जाना चाहिए कि हालांकि उनसे पूर्व हमारे यहां संपादन-पाठालोचन की कोई सुदीर्घ परम्परा विद्यमान नहीं थी, वे सुव्यवस्थित, योजनाबद्ध और वैज्ञानिक विधि से संपादन-पाठालोचन करते नज़र आते हैं. यह कौशल उन्होंणे सतत अभ्यास और अनुभव से अर्जित किया था. डॉ हाड़ा ने यहां यह भी बताया है कि मुनि जी की अनुसंधान की पद्धति “दो तरह की थी. एक तो वे किसी उपलब्ध प्राचीन रचना की नयी और प्रामाणिक पाण्डुलिपि की तलाश करते और दूसरे वे किसी सर्वथा नयी पाण्डुलिपि की खोज करते.” मुनि जी के काम के संदर्भ में यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अपने पाठ संपादन और आलोचनात्मक मूल्यांकन में उन्होंने आधिकारिक विद्वानों का सहयोग लेने में तनिक भी संकोच नहीं बरता. न केवल इतना, जहां उन्होंने उचित समझा पूरा का पूरा काम सम्बद्ध आधिकारिक विद्वान से कराया और खुद को केवल प्रास्ताविक लिखने तक सीमित रखा.

पुस्तक के ‘अवदान’ शीर्षक अध्याय में डो हाड़ा ने सही लिखा है कि “मुनि जिनविजय के काम का आकलन और मूल्यांकन नहीं हुआ, इसलिए उनको कम लोग जानते हैं. उनके अनुसंधान से हिंदी भाषा और साहित्य को अपने पांवों पर खड़े होने की ज़मीन मिली, उनके

काम से भारतीय राजनीतिक और सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहास के कई नए पहलू उजागर हुए, लेकिन इसका श्रेय उनको कम लोगों ने दिया. उनके अनुसंधान का मनोनीत क्षेत्र प्राचीन साहित्य था, इसलिए आधुनिक होने की हड़बड़ी और जल्दबाज़ी में आलोचक इतिहासकारों ने उनके काम को महत्त्व ही नहीं दिया. उनके नाम में प्रयुक्त 'मुनि' पद भी उनके काम के मूल्यांकन में बाधा बन गया." लेकिन जो भी लोग डॉ हाड़ा की इस सुलिखित किताब को पढ़ेंगे वे निश्चय ही मुनि जी के काम के महत्त्व को समझ सकेंगे और उनके बारे में और अधिक जानने को उत्सुक होंगे.

पुस्तक में तीन परिशिष्ट भी हैं जिनमें से एक में मुनि जी एक महत्वपूर्ण व्याख्यान, एक में उनका एक आत्मकथांश और तीसरे में उनके कृतित्व का परिचय दिया गया है. यहां संकलित व्याख्यान मुनि जी ने 1945 में उदयपुर में हिंदी साहित्य सम्मेलन के स्वगताध्यक्ष के रूप में दिया था. भारतीय साहित्य में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए. डॉ हाड़ा इस ऐतिहासिक महत्व के काम के लिए हमारी कृतज्ञता के पात्र हैं.

मुनि जिनविजय
माधव हाड़ा
साहित्य अकादेमी, रवींद्र भवन, 35, फ़ीरोज़शाह मार्ग, नई दिल्ली-110 001.
प्रथम संस्करण, 2016. पेपरबैक, पृ. 96. मूल्य: ` 50.00
●●●

समीक्षक सम्पर्क सूत्र:

ई-2/211, चित्रकूट, जयपुर-302021.